International Journal of Applied Research 2017; 3(6): 814-819

**ISSN Print:** 2394-7500
**ISSN Online:** 2394-5869
**Impact Factor:** 5.2
IJAR 2017; 3(6): 814-819
www.allresearchjournal.com
Received: 05-04-2017
Accepted: 11-05-2017

**महेश चन्द्र शर्मा**
शोधच्छात्र
संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

**Correspondence**
**महेश चन्द्र शर्मा**
शोधच्छात्र
संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

# जैनेन्द्र व्याकरण में समास प्रकरण : एक अध्ययन

## महेश चन्द्र शर्मा

जैनेन्द्र व्याकरण पाणिनीय उत्तरकालीन शब्दानुशासन है जो आचार्य देवनन्दि द्वारा छठी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में लिखा गया है। यह प्रसिद्ध जैनाचार्य है इन्हें पूज्यपाद नाम से भी अभिहित किया जाता है। यह जैन व्याकरण परम्परा का सबसे प्राचीन व्याकरण है। प्रस्तुत शोधपत्र में जैनेन्द्र व्याकरण के समास-प्रकरण समीक्षा की गई है। जैनेन्द्र व्याकरण में पाणिनीय समास-प्रकरण से कुछ समानता तथा कुछ असानताएँ दिखाई देती हैं। कहीं सूत्र गत भेद, कहीं उदाहरणों में भेद तथा किन्हीं स्थलों में प्रक्रिया सम्बन्धी भेद भी दिखाई देते हैं, जिनका विववेचन प्रस्तुत है-

| पाणिनीय व्याकरण में सामास भेद | जैनेन्द्र व्याकरण में समास भेद |
|---|---|
| | समास के लिये - सः ।।१।३।२ सूत्र का प्रयोग। |
| अव्ययीभाव -अव्ययीभावः ।।२।१।५ | अव्ययीभाव के लिये - हः ।। १।३।४ सूत्र का प्रयोग। |
| तत्पुरुष - तत्पुरुषः ।।२।१।२२ | तत्पुरुष के लिये - षम् ।।१।३।१९ सूत्र का प्रयोग। |
| कर्मधारय- तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः ।।१।२। ४२ | कर्मधारय के लिये - यः - १.३.४७ सूत्र का प्रयोग। |
| द्विगु -संख्यापूर्वो द्विगुः।। २।१।५२ | द्विगु के लिये - रः - संख्यादी रश्च १.३.४७ सूत्र का प्रयोग। |
| बहुव्रीहि -अनेकमन्यपदार्थे।।२।२।२४ | बहुव्रीहि के लिये - बम् - अन्यपदार्थेऽनेकमं बम्- १.३.८६ सूत्र का प्रयोग। |

**समास-प्रक्रिया –**जैनेन्द्र-व्याकरण के समास-प्रक्रिया में सुप् सुपा।।१।३।३सूत्र से स[1] (समास) का विधान किया जाता है। कृद् धृत्सा ।।१।१।६ सूत्र से कृदन्त, हृदन्त (तद्धित), स (समास) की मृत् (प्रातिपदिक) संज्ञा की जाती है। सुपो झेः ।।१।४।१५० सूत्र से झि (अव्यय) से उत्तर सुप् को उब् (लोप) होता है। वोक्तम् न्यक् ।।१।३।९३ सूत्र से प्रथमानिर्दिष्ट की न्यक्संज्ञा (उपसर्जन संज्ञा) होती है। पूर्वम् ।।१।३।९७ सूत्र से स (समास) में न्यक् का पूर्व प्रयोग होता है। एकदेशविकृस्यानन्यत्वात् ।।४।४।५४ न्याय से पुनः मृत् संज्ञा और उसके बाद स्वादि उत्पत्ति होती है। स्वौजसमौट्छष्टाभ्यांभीस्ङेभ्यांभ्यस्ङसिभ्यांभ्यस्ङसोसाम्ङ्योस्सुप्।। ३।१।२ से विभक्ति

[1] जैनेन्द्र व्याकरण सूत्र ।।१।३।२

तथा वचनों का निर्धारण किया जाता है। यह प्रक्रिया समास की सामान्य प्रक्रिया है। विशेष स्थलों पर अन्य प्रक्रिया भी होती हैं जिसका विवेचन अपवाद स्वरूप किया जाता है। इस प्रकार पाणिनि और जैनेन्द्र दोनों व्याकरणों में प्रक्रिया लगभग समान है। लेकिन सूत्रों के स्वरूप में भेद है।

**अव्ययीभाव समास**

आचार्य देवनन्दी द्वारा पाणिनीय अव्ययीभाव समास विधायक अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धिव्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रतिशब्दप्रादुर्भावपश्चाद्यथानुपूर्व्ययौगपद्यसादृश्यसम्पत्तिसाल्या-न्तवचनेषु ।।२।१।६ सूत्र में आंशिक परिवर्तन किये गये हैं। आचार्य देवनन्दी द्वारा प्रणीत सूत्र है-

**झि-**

**विभक्तयभयासद्धर्यर्थाभावातीत्यसंप्रतिव्यृद्धिशब्दप्रभवपश्चाद्यथानुपूर्व्ययौगपद्यसम्पत्साकल्यान्तोक्तौ (जै.सू.) ।।१।३।५**

अर्थात् विभक्ति (विभक्ति-अभ्यास-ऋद्धि-अर्थाभाव-अतीति-असंप्रति-व्यृद्धि-शब्दप्रभव-पश्चात्-जैसे-आनुपूर्व्य-यौगपद्य-सम्पत्-साकल्य-अन्तोक्ति) आदि पन्द्रह अर्थों में झि (अव्यय) का समर्थ सुबन्त के साथ 'ह' संज्ञक समास होता है।

**जैनेन्द्र व्याकरण में अव्ययीभाव समास विधायक प्रमुख सूत्र**

**हेऽकाले (जै.सू.)** ।।४।३।१८९ कालवाची शब्द परे न रहने पर हस् (अव्ययीभाव समास) में सह के स्थान पर स आदेश होता है। जैसे- शिलेन सह सशिलम् । युगपद, सम्पत्, साकल्यान्त आदि में भी हस में सह के स्थान पर स होता है2 । जैसे- चक्रेण युगपत् सचक्रम् । वृतस्य सम्पत् सवृतम् ।

**यावद्यथावधृत्यसादृश्ये (जै.सू.)** ।।१।३।६ अवधृति अर्थ में यावत् अव्यय का तथा असादृश्य अर्थ में विद्यमान यथा अव्यय का समर्थ सुबन्त के साथ ह संज्ञक समास होता है। जैसे-यावदमत्रं यावदकाशमतिथीन् भोजय । यथावृद्धं साधूनचर्य ।

**पर्यपाङ्बहिरञ्चवः कया (जै.सू.)** ।।१।३।१० अर्थात् परि, अप्, आङ्, बहिस् तथा अञ्चु समर्थ सुबन्तों का (पञ्चम्यन्त) कान्त समर्थ सुबन्तों के साथ विकल्प से (अव्ययीभाव समास) हस होता है। जैसे- आपाटलिपुत्रम्। आकुमारम् ।

**लक्षणेनाभिमुख्येऽभिप्रति (जै.सू.)** ।।१।३।११ लक्षणवाची सुबन्त के साथ अभि तथा प्रति अव्यय का आभिमुख्य अर्थ में विकल्प से ह (अव्ययीभाव) संज्ञक हस् होता है। जैसे - अभ्यग्नि प्रत्यग्नि शलभाः पतन्ति ।

**तत्पुरुष समास**

**इप् षस (द्वितीया तत्पुरुष)**

**इषा च प्राप्तापन्ने (जै.सू.)**।।१।३। इबन्त (द्वितीयान्त) सुबन्त का प्राप्तापन्न शब्द रूप के साथ इप् षस होता है। स्त्रीगोर्नीचः (जै.सू.) ।।१।१।८ न्यक् संज्ञक स्त्रीत्यान्त (प्रत्ययान्त) तथा गोशब्दान्त मृद (प्रातिपदिक) को प्रादेश (ह्रस्वादेश) होता है। जैसे -प्राप्तजीविकः । आपन्नजीविकः । चकार इति किम् ? चकार से अनुवृत्ति अकार भी होता है जैसे- प्राप्तजीविका । आपन्नजीविका ।

**इषच्छ्रितातीतपतितगतात्यस्तैः (जै.सू.)** ।।१।३।२१ इबन्त द्वितीयान्त सुबन्त का स्रित, अतीत, पतित, गत, अत्यस्त इन प्रकृति वाले सुबन्तों के साथ इप् षस होता है। जैसे धर्मस्रितः । संसारातीतः । नरकपतितः ।पाणिनीय के द्वितीया स्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः।।२।१।२३ सूत्र के स्थान पर देवनन्दि ने उक्त सूत्र के प्राप्तापन्न को अलगकर दो सूत्रो मे विभक्त किया है।

**अविच्छेदे (जै.सू.)** ।।१।३।२६ अक्तान्त । निकटतम संयोग संबन्ध कालवाचि इबन्त पद का सुबन्त के साथ इप् षस होता है। जैसे - सर्वरात्रकल्याणी । पाणिनीय अत्यन्तसंयोगे च ।।२।१।२९ के स्थान पर देवनन्दि इसका पर्याय रूप में अविच्छेदे सूत्र का प्रयोग किया है ।

**भा षस (तृतीया तत्पुरूष)**

**भा गुणोक्तयार्थेनोनैः (जै.सू.)** ।।१।३।२७ भान्त (तृतीयान्त) सुबन्त का भान्त के अर्थ के द्वारा सम्पादित जो गुण, तद्विशिष्ट पदार्थ के वाचक सुबन्त के साथ षस होता है। जैसे -शङ्कुलाखण्डः । गिरिणाकाणा । देवनन्दि ने अपने सूत्र में तृतिया के स्थान पर भा का प्रयोग किया है

[2] यौगपद्यसम्पतसाकल्यान्तोक्तिषु सह शब्दो वर्तते । जैनेन्द्र प्रक्रिया, पृ०सं०-१४५

क्योकि वो तृतिया विभक्ति का भा कहते है।[3] शब्दार्णवचन्द्रिका मे इसके स्थान पर भा तत्कृतयार्थेनोनैः।।१।३।२८ सूत्र का प्रयोग किया है।

**साधनं कृता बहुलम् (जै.सू.) ।।१।३।२९** साधन भान्त कारक सुबन्त का समर्थ कृदन्त सुबन्त के साथ बहुलता से षस होता है। जैसे -कर्तृ -अहिना हतः 'अहितः'। करणम्- विषण हतः 'विहतः'। 'कृद्ग् ग्रहणे तिकारकपूर्वस्यापि' परिभाषा से कृत का ग्रहण करने पर ति पूर्व और कारक पूर्व,कृदन्त का भी ग्रहण करना चाहिए, जैसे- नखैःर्भिन्नैः 'नखनिर्भिन्नः' देवनन्दि ने पाणिनीय कर्तृकरणे शब्द के स्थान पर साधन शब्द का प्रयोग किया है तथा गति के स्थान पर ति का प्रयोग किया है क्योकि वो गति संज्ञा को ति कहते है।[4]

**अप् षस (चतुर्थी तत्पुरुष) -**

**अप्रदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः (जै.सू.) ।।१।३।३।३१**

अबन्त सुबन्त का तदर्थ,बलि,हित,सुख तथा रक्षित -इन सुबन्त समर्थ शब्दों के साथ षस होता है। बहुलग्रहणानुवृति से तदर्थ का अभिप्राय प्रकृतिविकृति भाव से है।[5] जैसे- यूपदारु ।कुण्डलहिरण्यम्।अर्थ शब्द के साथ नित्य समास होता है। त्रि लिग्ङता का ग्रहण लोकाश्रय तिनो लिग्ङो से होता है। जैसे - आतुरार्था यवागूह। आतुरार्था सूपः । तादर्थे अप् - गोहितम्।गोसुखम्।देवनन्दि ने पाणिनीय चतुर्थीतदर्थाथलिहितसुखरक्षितैः ।।२।१।३५ सूत्र में चतुर्थी के स्थान पर अप् का प्रयोग किया है क्योकि उन्होने चतुर्थी विभक्ति को अप् नाम दिया है।[6]

**का षस् (पञ्चमी तत्पुरूष)**

**का भीभिः (जै.सू.) ।।१।३।३२** कान्त (पञ्चम्यन्त) सुबन्त का भीवाचक शब्द के साथ षस होता है। जैसे- वृकभीः।वृकभीतः।वृकभयम् ।

उल्लेखनीय है कि आचार्य देवनन्दि ने पञ्चमी विभक्ति को का कहते है।[7] इसलिए 'पञ्चमी' के स्थान पर 'का' प्रयोग किया है तथा लाघव के लिए पाणिनीय पञ्चमी भयेन।।२।१।३६ सूत्र तथा 'भयभीतभीतिभीभीरिति वाच्यम्' वार्तिक १२७५ दोनो सूत्रों के स्थान पर एक सूत्र का प्रयोग किया है। शब्दार्णव चन्द्रिका में इसके स्थान पर का भ्यादिभिः ।।१।३।३३ सूत्र का उल्लेख मिलता है।

**मुक्तापेतापोढपतितापत्रस्तैः प्रायः (जै.सू.) ।१।३।३३**

मुक्त -अपेत-अपोढ-पतित-अपत्रस्त इन शब्दो का प्रायः (कुछ) कान्त पञ्चम्यन्त शब्दो के साथ षस होता है। जैसे - भवमुक्तः।पापापेतः । देवनन्दि ने पाणिनीय अपेतापोढमुक्तपतितापत्रस्तैरल्पशः।।२।१।३८ सूत्र के मुक्त शब्द को मद्य से हटाकर आदि में तथा अल्पशः के स्थान पर प्रायः शब्द का प्रयोग किया है।

**ता षस (षष्ठी तत्पुरुष)**

**ता (जै.सू.) ।।१।३।७०** तान्त (षष्ठयन्त) का सुबन्त के साथ षस होता है।जैसे- स्वर्गसुखम् । मोक्षमार्गः। देवनन्दि ने षष्टि विभक्ति को ता कहते है।[8] इसलिए पाणिनीय षष्ठी।।२।२।८ सूत्र के स्थान पर ता सूत्र का उल्लेख किया है।

**कृति (जै.सू.) ।।१।३।७१** कृत प्रयोग में तान्त का समर्थ सुबन्त के साथ षस होता है जैसे - इध्मप्रव्रश्चनः।श्मश्रुकर्तनः। देवनन्दि ने पाणिनीय 'कृद्योगा च षष्ठी समस्यत इति वाच्यम्' वार्तिक संख्या- १३१७ को कृति सूत्र रुप में प्रयोग किया है।

**ईप् षस (सप्तमी तत्पुरूष)**

**ईप्छौण्डैः (जै.सू.) ।।१।३।३५** ईबन्त (सप्तम्यन्त) सुबन्त का शौण्ड आदि सुबन्तों के साथ षस होता है। जैसे -अक्षेषु प्रसक्तः शौण्डः अक्षशौण्डः ।पानशौण्डः।शौण्डादि गण में अधि शब्द का पाठ् मिलता है अतः अधि शब्द के साथ भी ईबन्त का षस होता है ।देवनन्दि सप्तमी विभक्ति को ईप् कहते हैं ।[9] इसलिए पाणिनीय सप्तमीशौण्डैः ।।२।१।४० सूत्र में सप्तमी के स्थान पर ईप् का प्रयोग किया है

**खौ (जै.सू.) ।।१।३।३८** खु (संज्ञा) वाचक शब्दो में ईबन्त सुबन्त का समर्थ सुबन्त के साथ षस होता है। विग्रह वाक्य में खु का ज्ञान नहि होने से यह नित्य समास है। ईपोऽद्धलः।।४।३।१२७ सूत्र से अनुप (अलोप) होता है जैसे- अरण्येतिलकाः। वनेकसेरुकाः । देवनन्दि ने संज्ञा को

[3] कतृकरणे भा।।१।४।२९ शब्दाणर्वचन्द्रिका ।

[4] जैनेन्द्र व्याकरण सूत्र - ति।।१।२।१३०

[5] बहुलग्रहणानुवृत्तेः प्रकृतिविकृतिभावे तदर्थेन वृत्ति -जैनेन्द्र महावृत्ति पृ०सं०५१

[6] जैनेन्द्र व्याकरण सूत्र - सम्प्रदानेऽप।।१।४।२३

[7] जैनेन्द्र व्याकरण सूत्र- काऽपादाने ।।१।४।३७

[8] जैनेन्द्र व्याकरण सूत्र- ता शेषे।।१।४।५७

[9] जैनेन्द्र व्याकरण सूत्र- ईबऽधिकरणे च।।१।४।४४

खु कहा है।[10] इसलिए पाणिनीय संज्ञायाम्।।२।१।४३ सूत्र के स्थान पर खौ सूत्र का प्रयोग किया है तथा लाघव के लिए पाणिनीय हलदन्तातसप्तम्याः संज्ञायाम्।।६।३।८ सूत्र के स्थान पर ईपोऽद्धलः सूत्र का उल्लेख किया है।

**यः (कर्मधारय)**

**पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलं यश्चैकास्त्रये (जै.सू.) ।।१।३।४४** पूर्वकालवाची ,सर्व,जरत्,पराण,नव तथा केवल,सुबन्तों का एकास्त्रय (समानाधिकरण) वाले सुबन्त के साथ य संज्ञक स होता है। जैसे- पूर्वं स्नाताः पश्चादनुलिप्ता स्नातानुलिप्तः। देवनन्दि ने समानाधिकरण को एकास्त्रय कहा है।[11]पाणिनीय पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन।।२।१।४८ सूत्र में समानाधिकरण के स्थान पर एकास्त्रय शब्द का उल्लेख किया है।

**विशेषणं विशेष्येणेति (जै.सू.) ।।१।३।५२** विशेषण सुबन्त का एकास्त्रय (समानाधिकरण) विशेष्य सुबन्त के साथ य षस होता है। जैसे- कृष्णकम्बलः।लोहितशाटी। देवनन्दि ने पाणिनीय विशेषणं विशेष्येण बहुलम्।।२।१।५६ सूत्र में बहुलम् के स्थान पर इति शब्द का प्रयोग किया है इसे देवनन्दि ने बहुल के पर्याय के रुप में ग्रहण किया है।[12]

**रः (द्विगु समास)**

रसः (द्विगु समास) तीन प्रकार का होता है १-हृद् ( तद्धित) विषय में। २ - द्युपर (उत्तरपद )। ३-समाहार अर्थ में होता है।[13]

**हृदर्थद्युसमहारे (जै.सू.)** ।।१।३।४६ हृदर्थ (तद्धितार्थ) विषय में, द्युपरः तथा समाहार वाच्य हो तो दिक् (दिशावाचक) और संख्यावाचक सुबन्त का एकास्त्रय सुबन्त के साथ षस होता है। आचार्य देवनन्दि ने सूत्र को अल्पाक्षर बनाने के लिए पाणिनीय तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च।।२।१।५० सूत्र के तद्धित के स्थान पर हृदर्थ तथा उत्तरपद के स्थान पर द्युः का प्रयोग किया है।

**संख्यादी रश्च (जै.सू.) ।।१।३।४७** 'हृदर्थद्युसमहारे' पूर्वोक्त सूत्र में जो त्रिविध समास होता है यदि उसका पूर्वपद संख्यावाचक हो तो उसकी रः(द्विगु) संज्ञा होती है। जैसे- पञ्चगवम्। आचार्य देवनन्दि ने लाघव दृष्टि से द्विगु संज्ञा को और संक्षिप्त करने के लिए, एकाक्षर रः संज्ञा रखा है। इसलिए पाणिनीय संख्या पूर्वो दिगुः।।२।१।५१ सूत्र के स्थान पर संख्यादी रश्च सूत्र का प्रयोग किया है।

**प्रादि षसः (प्रादि तत्पुरुष)**

**तिकुप्रादयः (जै.सू.) ।।१।३।८१** ति (गति )संज्ञक, कु कत्सित वाचक अव्यय और प्रादि आदि का समर्थ सुबन्त के साथ नित्य षस होता है। क्रियायोगे गि,ति ।१।२।१३०-१३१ क्रिया के योग में इनकी गि (उपसर्ग) और ति (गति) संज्ञा होती है।परन्तु क्रिया के योग का अभाव होने पर इनकी गि और ति संज्ञा नही होती है तब इनका तिकुप्रादयः सूत्र से समर्थ सुबन्त के साथ नित्य षस होत है। जैसे- प्राचार्यः। अवकोकिलः।

**देवनन्दि ने प्रादि षस के अन्तर्गत केवल पाणिनीय विभक्तियों में परिवर्तन किये हैं।**

| पाणिनीय प्रादि तत्पुरुष समास | जैनेन्द्र प्रादि षस |
|---|---|
| प्रादयो गताद्यार्थे प्रथमा (वा०-५८) | प्रादयो गताद्यार्थे च वया (वा०) |
| अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीया (वा-५९) | अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे इपा (वा०) |
| अवादयः क्रुष्टाद्यर्थे तृतीया (वा-६०) | अवादयः क्रुष्टाद्यर्थे भया (वा०) |
| पर्यादयो ग्लानाद्यर्द्यर्थे चतुर्थी (वा०-६१) | पर्यादयो ग्लानाद्यर्द्यर्थे अपा (वा०) |
| निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चमा (वा-६२) | निरादयः क्रान्ताद्यर्थे कया (वा०) |

**बसः (बहुव्रीहि समास)**

**अन्यपदार्थेऽनेकं बम् (जै.सू.) ।।१।३।८६** अन्यपद के अर्थ में विद्यमान एक से अधिक प्रथमान्त पदों का बसंज्ञक स होता है। जैसे- चित्रगुः।अन्य ग्रहणम् किम्- स्वपदार्थ में बम् नहि होता है। आचार्य देवनन्दि ने पाणिनीय अनेकमनयपदार्थे।। सूत्र में अन्यपदार्थ को आदि में रखा है तथा बहुव्रीहि के स्थान पर ब का प्रयोग किया है।गुणनन्दि ने इसके स्थान पर अवान्यर्थेऽनेकम्।।१।३।८९ सूत्र का उल्लेख किया है।

**ईब्विशेषणे बे (जै.सू.) ।।१।३।१०१** बस में ईबन्त (सप्तम्यन्त) पद तथा विशेषण पद का पूर्व प्रयोग होता है।

---

[10] जैनेन्द्र व्याकरण सूत्र-संज्ञाः खुः ।।१।१।२९

[11] एकाश्रयःसमानाधिकणम्- जैनेन्द्रमहावृत्ति सूत्र १।३।४४

[12] इतिशब्दः किमर्थो यत्र लोके विवक्षा तत्र जैसे स्यात्। इह न भवति रामो जामदग्न्यः। इह कृष्णसर्पः संज्ञादिषु नित्यः साविधिः। वाक्यं तु सादृश्यमात्रेण निलोत्पलम्। - जैनेन्द्रमहवृत्तिः पृ०सं०-५४

[13] रसस्त्रिविधः।हृद्विषयः।द्युपरः।समाहारार्थश्चेति। शब्दार्णवचन्द्रिकाधारि जैनेन्द्र प्रक्रिया पृ०सं०-१३९

जैसे- कण्ठेकालः।उरसिलोमः। 'सर्वनामसंख्ययोः पूर्वनिपातो वक्तव्यः' वा०से सर्वनामसंज्ञक और संख्यावाचक शब्दो का पूर्वप्रयोग होता है।सर्वश्वेतः । देवनन्दि ने पाणिनीय सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ।।२।२।३५ के स्थान पर ईब्विशेषणे बे सूत्र एवं पाणिनीयसर्वनामसंख्ययोरुपसंख्यानम्( वा०सं० -१४१९) के स्थान पर 'सर्वनामसंख्ययोः पूर्वनिपातो वक्तव्यः' वा० का प्रयोग किया है।

**द्वन्द्व समास**

**प्राणितूर्यसेनाङ्गानां द्वन्द्व एकवत् (जै.सू.) ।।१।४।७८** प्राणि, तूर्य और सेना के अङ्गो के वाचक शब्दों का द्वन्द्व समास एकवद् (एकवचन) होता है । यहाँ यह उल्लेखनीय है कि द्वन्द्व स (समास) समाहार एवं इतरेतर दोनों अर्थो में प्राप्त होता है किन्तु एकवद् ग्रहण करने से समाहार द्वन्द्व का ही बोध होता है। जैसे–पाणिपादम्। मार्दङ्किपाणिविकम्।

अष्टाध्यायी में उक्त सूत्र में द्विगुरेकवचनम् ।।२।४।११ सूत्र से (एकचवनान्त) एकवद् की अनुवृत्ति आती है इसलिये एकवद् पद का सूत्र में विवेचन नहीं किया है। ध्यातव्य है कि जैनेन्द्रव्याकरण में इस सूत्र का उल्लेख नहीं किया गया है अतः देवनन्दि ने प्राणि प्राणितूर्यसेनाङ्गानां द्वन्द्व एकवत् ।[14] सूत्र में एकवद् पद को जोड़ा है । शब्दार्णवचन्द्रिका के कर्त्ता गुणनन्दि ने इसके स्थान पर प्राणितूर्यांगद्वन्द्व एकवत्तुल्य ।। १।४।९० सूत्र का प्रयोग किया है ।

**द्वन्द्वे सुः (जै.सू.)।।१।३।९८** द्वन्द्व में (स्वान्त) घि संज्ञक का पूर्व प्रयोग होता है । जैसे– मुनिगुप्तौ । आचार्य देवनन्दि ने पाणिनीय द्वन्द्वे घि ।२।२।३२ सूत्र में घि के स्थान पर सुः शब्द का प्रयोग किया है। अतः जैनेन्द्र व्याकरण में घि संज्ञा के लिये सु संज्ञा का विधान किया गया है।[15] शब्दार्णवचन्द्रिका में इस सूत्र के स्थान पर द्वन्द्वे घिस्वेकं ।।१।३।११२ सूत्र का उल्लेख मिलता है।

**अजाद्यत् (जै.सू.)।।१।३।९९**अजादि अदन्त शब्दरूप का द्वन्द्व में पूर्व प्रयोग होता है। जैसे–इन्द्रचन्द्रौ।उष्ट्रशशम्। यहाँ तपर का ग्रहण करने से 'वृक्षाश्वे' में पूर्व प्रयोग नहीं होता है। आचार्य देवनन्दि ने पाणिनीय अजाद्यन्तम् ।।२।२।३३ सूत्र में अदन्त के स्थान पर अत् का प्रयोग किया है ।[16] अतः दोनों व्याकरणों में अदन्त एवं अत् का प्रयोजन तपरकरण ही है

**राजदन्तादौ (जै.सू.) ।।१।३।९६** राजदन्त आदि शब्दों में न्यक् (उपसर्जन) संज्ञक का पर (निपात्) में प्रयोग होता है। जैसे– इन्द्रचन्द्रौ। आचार्य देवनन्दि ने लाघव के लिए पाणिनीय राजदन्तादिषु परम् ।।२।२।३१ सूत्र के परम् शब्द का उल्लेख नहीं किया है। किन्तु पाणिनीय सूत्र में परम् शब्द के प्रयोग से ही सूत्रार्थ स्पष्ट हो जाता है। जैनेन्द्र में वृत्ति के माध्यम से सूत्रार्थ का ज्ञान होता है ।

**उपसंहार**

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि जैनेन्द्र व्याकरण के समास प्रकरण में पाणिनि व्याकरण की अपेक्षा संक्षेप को अधिक महत्त्व दिया है। अनेक संज्ञाओं में परिवर्तन किया है। यद्यपि संक्षेप करने से समास की संज्ञाओं का स्वररूप छोटा हो गया है लेकिन ऐसा करने से अर्थबोध में जटिलता का अनुभव होता है। जैनेन्द्र व्याकरण में अन्वर्थ संज्ञाओं का अभाव है। सूत्रों, संज्ञाओं, प्रत्ययों आदि का संक्षेप करना आचार्य देवनन्दी का मौलिक चिन्तन है।

अनेक पाणिनीय समास सूत्रों को प्रकारार्थ में प्रस्तुत किया है। उल्लेखनीय है प्रकारार्थ में कहे गये सूत्रों का अभिप्राय समान है। अनेक वार्तिकों का सूत्र में ही समावेश कर दिया गया है। एसे भी अनेक वार्तिक हैं जिनको वृत्ति में समझाया गया है।

इस प्रकार पाणिनीय व्याकरण के शास्त्रीय पक्षों को आचार्य देवनन्दि ने संक्षेप करने का प्रयास किया है। ध्यातव्य है कि जैनेन्द्र व्याकरण जैन समाज में प्रसिद्ध तो हुआ लेकिन जैनेतर वैयाकरणों में पाणिनीय व्याकरण की भाँति प्रसिद्ध नहीं हो पाया।

**संदर्भ ग्रन्थ सूची**

**मूलग्रन्थ**


1. अष्टाध्यायी सूत्रपाठः – (प्रकरण निर्देश समन्वितः), सं०पुष्पा दीक्षित, ज्ञान भारती पब्लिकेशन, शक्तिनगर, दिल्ली,२००९
2. जैनेन्द्र प्रक्रिया – गुणनन्दि,सं० श्री लाल जैन,पन्नालालजैनमंत्री भारतीयजैनसिद्धाप्रकाशिनीसंस्थाकाशी, वीरनिर्वाण संवत् २४४१


[14] जै०व्या० सूत्र –१।४।७८

[15] जै०व्या० सूत्र–स्वसखि।।१।२।९७

[16] अजादि अदन्तं शब्दरुपं द्वन्द्वे पूर्व पर्योक्तम् । तपरकरनम् किम्– वृक्षाश्वे जैनेन्द्र महावृत्ति पृ०सं०–६४

3. जैनेन्द्रप्रक्रिया – पं० वशीधर,प्रकाशयिता– आकलूजनिवासी श्रेणी नाथा–रङ्गजी गांधी,वीराब्द २४४४
4. जैनेन्द्र लघुवृत्तिः – राजकुमार, विद्याविलास मुद्रणालय, १९२४
5. जैनेन्द्रव्याकरणम् – देवनन्दि, (अभयनन्दि महावृत्ति सहितम्) सं० शम्भुनाथ त्रिपाठी, भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, द्वितीय संस्करण २०१३
6. शब्दार्णवचन्द्रिका – सोमदेवसूरि, (जैनेन्द्रलघुवृत्ति सहितम्), सं०श्रीलाल जैन, पन्नालालजैन औदुम्बरनाम्नि मुद्रणालय, काशी ,ख्रीष्टाब्द १९१५

**सहायक-ग्रन्थ-सूची**

1. प्रेमी,नाथुराम – जैन साहित्य और इतिहास,चौखम्बा विद्याभवन,वाराणासी, १९५६
2. मीमांसक,युधिष्ठर – संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग,भारतीय प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान
3. जैन साहित्य का बृहत् इतिहास – पार्श्वनाथ विद्याश्रम, शोध संस्थान, वाराणासी, १९६६